RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-03
March-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

क्षेत्रीय आर्थिक विकास में प्राविधिक प्रगति एवं नवाचार का विश्लेषण

डॉ0वीना उपाध्याय

असि0प्रो0–अर्थशास्त्र विभाग स्व0रामराज वर्मा पी0जी0कालेज सारंगपुर, सुलतानपुर(उ0प्र0)

क्षेत्रीय विकास के मार्ग में तकनीकी प्रवर्तनों का विशेष महत्व है। ये शोध एवं अनुसंधान का परिणाम होते हैं। तकनीक में परिवर्तन श्रम की उत्पादकता, पूंजी एवं उत्पादन के अन्य साधनों में विस्तार करता है। तकनीक ग्रामीण विकास के लिए एक चिकने तेल की भांति कार्य करती है। उन्नत देशों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि ऐसे देशों के आर्थिक विकास में प्राकृतिक मानवीय एवं अन्य संसाधनों की तुलना में प्राविधिक प्रगति का अपना एक विशिष्ट योगदान रहा है। प्रमुखतया तकनीकी प्रगति उत्पादन प्रविधि में सुधार करती है और उत्पाद में वृद्धि करती है। यह ज्ञान में विस्तार करती है और दक्षताओं को प्रबल बनाती है। यह उन संसाधनों का उचित दोहन एवं विदोहन करती है जो उत्पादन एवं उत्पादकता की वृद्धि के लिए आवश्यक होते हैं।

विकास के विभिन्न विद्यार्थियों जैसे **हयामी** एवं **रुस्तम** (1970) **शुल्ट्ज** (1964) एवं **रोस्टोव** ने जो भी विकास के सिद्धान्तों का निर्माण किए हैं उनके मूल में कहीं न कहीं प्राविधिक प्रगति का समावेश किया गया है। **शुल्ट्ज** का मानना है कि परंपरागत ढंग से आधुनिकीकृत तरीके में कृषि का संक्रमण काल काफी हद तक प्राविधिक प्रगति एवं नव प्रवर्तनों से प्रभावित रहा। रोस्टोव के अनुसार जब एक बार परम्परागत जीवन की स्थिर अवस्था बाधाग्रस्त होती है तब समाज बाद की अवस्थाओं **1. विकास की पूर्व की शर्त 2. परिपक्वता की अवस्था** एवं **3. अधिकाधिक उपभोग की अवस्था** से होकर गुजरता है। कुजनेट्स ने भी आधुनिक आर्थिक विकास में प्राविधिक विकास प्रगति के महत्व को स्वीकार किया है, इनका मानना है कि नव प्रवर्तन आर्थिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण तकनीकी तत्व है। कुजनेट्स का मानना है कि अर्धविकसित देशों को अल्पकाल में आधुनिक तकनीकों का आयात करना चाहिए जो उनके उत्पादक क्षमता में विस्तार करती है, क्योंकि ये देश तब तक इंतजार नहीं कर सकते जब तक कि ये स्वयं इस तरह की उन्नत तकनीक की खोज न कर लें। परन्तु यदि ये आयातित तकनीक का प्रयोग करते हैं। तब इन्हें अपनी तकनीकी दक्षता में विस्तार करना चाहिए। एक अर्थव्यवस्था के त्वरित विकास के लिए शुम्पीटर दो तरह के गत्यात्मक प्रभावों की विवेचना करते हैं–**1. कारक उपलब्धता पर प्रवर्तन प्रभाव** जो कि विकासघटक कहलाता है, एवं **2. तकनीकी एवं सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव**।

शुम्पीटर के आर्थिक विकास के मॉडल के अनुसार उद्यमी उत्पादन का केन्द्र बिन्दु होता है। वह नयी–नयी तकनीकों की खोजकर उत्पादन की प्रविधि में क्रांतिकारी परिवर्तन लाता है। शुम्पीटर व्यापार–चक्रों की संरचना में प्राविधिक प्रगति एवं नव प्रवर्तनों के महत्व को स्वीकार करते हैं। उनके अनुसार प्रति व्यक्ति उत्पाद वृद्धि की कोई सीमा नहीं होती है। महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि भारी मात्रा में तकनीकी परिवर्तनों को कैसे विस्तारित किया जाय? प्रथम दृष्टया साधारण आर्थिक पृष्ठभूमि नव प्रवर्तनों एवं तकनीकी दक्षताओं के लिए अनिवार्य है। व्यक्ति विशेष को अनुसंधानों एवं नवीन संरचनात्मक क्रियाओं के लिए उत्प्रेरणाएं मिलनी चाहिए। वह देश जहां मध्यवर्गीय एवं सुगठित मात्रा में परिवारों की उपलब्धता है, वह एक वैज्ञानिक, तकनीकी विद एवं अन्वेषक को जन्म दे सकता है। शिक्षण संस्थान प्रत्येक स्तर पर देश के लिए हितकारी ही होते हैं।

वर्ष 1965 के पूर्व भारत के कृषि क्षेत्र का परिदृश्य बहुत धुंधला था, लेकिन 1965 के बाद तमाम प्राविधियों जैसे उन्नतशील बीज, रासायनिक उर्वरक, मृदासंरक्षण, कीटनाशक एवं कृषिगत औजारों के प्रयोग से इसमें एक क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। 1970 में भारतीय आर्थिक एशोसिएशन के अध्यक्षीय भाषण में बोलते हुए **एम. एल. दान्तवाला (1970)** ने अनेक आर्थिक, तकनीकी, संस्थानिक एवं संगठनात्मक तत्वों की भूमिका पर प्रकाश डाला जो कि नवीन प्रविधि के इस्तेमाल से हरित क्रान्ति में सहायक हो सकती है। उन्होंने स्पष्ट किया कि नयी तकनीक की तुलना में भूमि, साख, बाजार, शिक्षा सम्बंधित कीमतें कर एवं अनुदान आदि कम महत्व रखते हैं। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि 1965 के पूर्व एवं इसके बाद के समय में हरित क्रांति के लिए नव प्रवर्तन एवं नवीन–प्रविधि ही महत्वपूर्ण कारक रही है। यह पूर्णतया सत्य है कि विकास के लिए नवीन तकनीक एक आवश्यक शर्त है, लेकिन यदि नवीन तकनीक को उचित संगठनों एवं संस्थाओं द्वारा प्रोत्साहन नहीं मिला तो यह परम्परागत कृषि में प्रवर्तन नहीं ला सकती।

भारत 1965 में फसल उत्पादन के क्षेत्र में अत्याधुनिक उपलब्ध नयी तकनीक का प्रयोग किया, लेकिन वर्तमान समय तक इसके औसत खाद्यान्न का उत्पादन 2,879 किग्रा./हे. ही रहा जबकि इसकी तुलना में चीन में यह 6017 किग्रा./हे. था। इतने बड़े उत्पादन अंतर के लिए कौन से तत्व जिम्मेदार हो सकते हैं? निश्चित रूप से इसके लिए प्राकृतिक संसाधन और तकनीक का ज्ञान आवश्यक नहीं है बल्कि इस अंतर को उत्पन्न करने में नवीन प्रविधि के इस्तेमाल की अहम भूमिका है जो कि प्रोत्साहन मूलक संस्थानों एवं संगठनों का परिणाम है। जिसमें

RRIJM 2015, All Rights Reserved

कीमतें, साख, विपणन, अनुदान एवं भूमि सुधार के क्षेत्र में सरकार की नीतियां एवं कार्यक्रम सम्मिलित है। भारतीय कृषि में फसल उत्पादकता में न्यूनस्तर बने रहने का मुख्य कारण यहां उर्वरक उत्पादन 75 किग्रा./हे. था जबकि यह जापान में 352 किग्रा./हे. तथा दक्षिण कोरिया में 448 किग्रा./हे. था। यद्यपि भारत में कृषि अनुसंधानों के लिए अधःसंरचना का व्यापक विस्तार हुआ है, जिसमें 45 शोध संस्थान, 10 प्रोजक्ट निदेशालय, 30 राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थान, 4 राष्ट्रीय ब्यूरो और 86 अखिल भारतीय समन्वित शोध परियोजना का गठन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आई.सी.ए.आर) द्वारा किया गया है, परन्तु कृषि क्षेत्र में अभी आशातीत सफलता नहीं मिल पायी है।

टोडारो का मानना है कि तकनीकी प्रगति के तीन आधारभूत विभाजन किए जा सकते हैं तटस्थ श्रम बचत एवं पूंजी बचत। तटस्थ तकनीक बचत उच्च उत्पाद स्तर से संबंधित है, जबकि उत्पादन का उच्च स्तर श्रम एवं पूंजी की समान मात्रा द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण से भी उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है तथा पूंजी गहन तकनीक से भी उत्पादन में वृद्धि होती है परन्तु इन दोनों के मध्य एक बड़ा अंतर पाया जाता है। टोडारो ने स्पष्ट किया है कि उन देशों में जहां श्रम की तुलना में पूंजी अधिक है, वहां पूंजी गहन तकनीक का प्रयोग करना आसान होता है जबकि तीसरी दुनिया के देशों में पूंजी के अभाव एवं श्रम की बहुलता के कारण यहां श्रम गहन तकनीक का प्रयोग ही किया जाता है। दोनों प्रकार की तकनीकों के प्रयोग का परिणाम उत्पादन में वृद्धि लाना ही है।

जब क्षेत्रीय विकास के क्षेत्र में नवीन प्रविधि का परीक्षण किया जा रहा हो तब हमें इनके प्रयोग में बड़ी सावधानी बरतनी चाहिए क्योंकि जहां एक ओर इन प्रविधियों के इस्तेमाल से उत्पादन में वृद्धि होती है, वहीं दूसरी ओर ये वायुमंडल में नकारात्मक प्रभाव भी डालते हैं। अर्धविकसित देशों में इन प्रविधियों का इस्तेमाल बड़ी तेजी से होता है, परन्तु ये यहां के वातावरण को भी बड़ी तेजी से प्रदूषित करती है। उदाहरणार्थ रासायनिक उर्वरकों का अंधाधुंध प्रयोग एवं फर्मों से निकलने वाले अवशिष्ट पदार्थ जैसे नेप्थाल, सल्फ्यूरिक अम्ल एवं अन्य क्षारीय तत्व नदियों के जल को प्रदूषित करते हैं तथा वायु एवं भूमि भी प्रभावित होती है जिससे मानव जीवन संकट ग्रस्त हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि नवीन प्रविधियों के विस्तृत उपभोग के पहले इनके दुष्परिणामों पर गम्भीरता से विचार करते हुए इनका न्याय संगत उपभोग किया जाय।

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्राविधिक प्रगति का किसी भी देश के ग्रामीण विकास में प्रमुख योगदान है। पश्चिमी यूरोप, अमेरिका तथा जापान में हाल में ही विकास में उच्च परिष्कृत तकनीक ने एक प्रमुख भूमिका निभाई है, जबकि विकासशील राष्ट्र अपनी वैज्ञानिक व तकनीकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए संघर्षरत है। तकनीक न केवल उत्पादन व उत्पादकता को बढ़ाती है, बल्कि उच्च परिष्कृत तकनीक उत्पादन लागत को बड़ी सीमा तक घटाकर उसके प्रभावी वितरण को सुनिश्चित करती है। तकनीक के माध्यम से उत्पादों के विकल्पों का विस्तारीकरण होता है और उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार होकर संसाधनों को अन्य व्यय मदों में लगाया जा सकता है। उन्नत परिष्कृत तकनीक द्वारा उत्पादित प्रयासों की मांग बढ़ जाती है और इससे उत्पादित वस्तुओं से अधिक विक्रय मूल्य प्राप्त होता है। परिष्कृत तकनीकी, समय, मानवीय संसाधन तथा आर्थिक संसाधनों को बचाकर औद्योगिक विकास हेतु पूंजी निवेश को सुरक्षित करता है, जिसे अन्य उद्योगों के स्थापना, विकास तथा पुनर्जीवन के लिए लगाया जा सकता है।

सामाजिक एवं संस्थानिक तत्व :

क्षेत्रीय विकास अनेक तत्वों–प्राकृतिक संसाधन, मानव संसाधन (श्रम), पूंजी, तकनीक और सामाजिक तथा संस्थानिक तत्वों से प्रभावित होता है। यद्यपि प्रतिष्ठित तथा नव प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने ग्रामीण विकास के लिए मुख्य रूप से प्राकृतिक संसाधनों को ही जिम्मेदार माना है। उनके अनुसार विकास प्रक्रिया में श्रम, पूंजी और तकनीक तथा सामाजिक एवं संस्थानिक तत्वों का कोई प्रमुख योगदान नहीं होता है। उनका मानना है कि विकास के लिए संस्थानिक संरचना का विकास आवश्यक नहीं है। वास्तव में ये अर्थशास्त्री विकास की प्रक्रिया में न्यूनतम सरकारी हस्तक्षेप का तर्क देते हैं और बाजार की अबंध नीति की वकालत करते हैं। **कार्ल मार्क्स** एक ऐसा संस्थानिक अर्थशास्त्री रहा है, जिसने विकास की प्रक्रिया में सामाजिक एवं संस्थानिक तत्वों की भूमिका पर प्रकाश डाला है। एक आर्थिक संगठन किसी अर्थव्यवस्था के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह उत्पादन प्रक्रिया में निजी उद्यमी को आगे आने की प्रेरणा देता है एवं उनके लिए उचित पृष्ठभूमि का सृजन करता है। यह देश में नागरिक क्षमताओं का विस्तार करता है। सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाएं जिसमें सहकारिता भी शामिल है, आदि अर्थव्यवस्था के लिए विकास का पथ प्रदर्शित करती है।

विकास की प्रक्रिया में संस्थाओं एवं संगठनों का प्रमुख योगदान है जो कृषि एवं क्षेत्रीय विकास को भिन्न–भिन्न तरीकों से प्रभावित करते हैं। इनमें सकारात्मक परिवर्तन उत्पादन एवं विकास में परिवर्तन लाता है। यद्यपि कि इन कारकों का विकास पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना करना कठिन होता है, परन्तु ग्रामीण विकास की प्रक्रिया में ये अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। सरकार द्वारा भारत के कृषि एवं ग्रामीण विकास के लिए निकट भविष्य में अनेकों संगठनों की स्थापना की जा रही है। सरकार द्वारा विकास को एक प्रमुख मुद्दे के रूप में देखा जा रहा है। ग्रामीण लोगों के जीवन–स्तर में सुधार हेतु सरकार द्वारा अनेकों प्रयास किए जा रहे हैं। संस्थानिक स्तर पर सम्पत्ति एवं संविदा के नियम आर्थिक विकास पर गंभीर प्रभाव डालते हैं। महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि **(क)** एक व्यक्ति अपनी सम्पत्ति का क्या कर सकता हैं? **(ख)** दूसरे उसकी सम्पत्ति का क्या कर सकते हैं? (ग) वह किस तरह की आर्थिक गतिविधियों में अपने को नियोजित कर सकता है? कुछ समाज जैसे जापान आदि

RRIJM 2015, All Rights Reserved

अपने यहां बिना किसी अवरोध के व्यक्तिगत फर्मों एवं निजीकरण को बढ़ावा देते हैं, जबकि दूसरे देश इस पद्धति के लिए कड़ा निर्देश लागू करते हैं। ये सभी प्रश्न सरकार की प्रभावोत्पादक व्यापारिक गतिविधियों से संबंधित है। प्रश्न यह है कि कैसे विभिन्न प्रकार की व्यापारिक गतिविधियां सरकार द्वारा संचालित की जाती हैं? कैसे करारोपण, तटकर, अंशदान एवं अन्य मदें इन क्रियाओं को हतोत्साहित करती हैं? और दूसरे को प्रोत्साहित करती है? आर्थिक विकास की प्रक्रिया में करारोपण और उत्तराधिकार के नियम आय के वितरण की असमानता को कैसे दूर करते हैं? ये सभी शक्तियां और तत्व आर्थिक उत्पादन के लिए उत्प्रेरणाओं का निर्धारण करते हैं। भारतीय संगठन और कंपनियां कृषि विकास के लिए एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। वास्तव में अनेकों प्रतिष्ठित कंपनियां जैसे **टाटा, मफतलाल, लार्सन एण्ड टुब्रो** एवं **हिन्दुस्तान लीवर लि.** भारतीय कषि एवं ग्रामीण विकास में अपनी प्रमुख भूमिका निभाते हैं। कार्पोरेट्स आधुनिक विज्ञान और तकनीक में लाभों को ला सकती है और विश्व बाजार में कृषि–विकास में वृद्धि लाकर ग्रामीण विकास को प्रोत्साहित कर सकती है।

क्षेत्रीय विकास के लिए मनोवैज्ञानिक व सामाजिक आवश्यकताओं का होना उसी प्रकार जरुरी है, जिस प्रकार आर्थिक आवश्यकताओं का। इसका कारण यह है कि राष्ट्रीय विनियोग नीति पर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक व आर्थिक प्रवृत्तियों का संयुक्त प्रभाव पड़ता है। किसी देश का आर्थिक विकास मूलरूप से इस बात पर निर्भर करता है कि लोगों में नूतन मूल्यों व संस्थाओं को अपनाने की कितनी प्रबल इच्छा है। वास्तव में गैर आर्थिक तत्वों के रूप में यह सामाजिक, मनोवैज्ञानिक व संस्थागत तत्व आर्थिक विकास की उत्प्रेरक शक्तियां हैं। प्रो. रागनर नर्कसे का मानना है कि ''आर्थिक विकास का मानवीय मूल्यों, सामाजिक प्रवृत्तियों, राजनैतिक दशाओं तथा ऐतिहासिक घटनाओं से एक घनिष्ठ संबंध रहा है। संयुक्त राष्ट्र संघ की प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार ''एक उपयुक्त वातावरण की अनुपस्थिति में आर्थिक प्रगति असंभव है। ग्रामीण–विकास के लिए आवश्यक है कि लोगों में प्रगति की प्रबल इच्छा हो, वे उसके लिए हर संभव त्याग करने को तत्पर हों, वे अपने आप को नए विचारों के अनुकूल ढालने के लिए जागरुक हों और उनकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व वैधानिक संस्थाएं इन इच्छाओं को कार्यरूप में परिणित करने में सहायक हों।'' अल्प विकसित देशों के आर्थिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण, वास्तव में सामाजिक व संस्थागत तत्व ही रहे हैं। इन देशों में जाति प्रथा, छुआछूत, संयुक्त परिवार प्रणाली, उत्तराधिकार के नियम, भूधारण की दोषपूर्ण व्यवस्था, भूमि व सम्पत्ति के प्रति मोह, अन्धविश्वास, रुढ़िवादिता, धार्मिक पाखण्ड, परिवर्तन के प्रति विरक्ति और उसका विरोध, सामाजिक अपव्यय तथा झूठी शान शौकत जैसे तत्वों ने आर्थिक विकास के मार्ग में सदैव बाधाएं उत्पन्न की हैं। इन देशों का आर्थिक विकास तब तक सम्भव नहीं हो सकता, जब तक कि इन सामाजिक, सांस्कृतिक व धार्मिक संस्थाओं का नए सिरे से नव निर्माण न कर दिया जाय। अतः इस दृष्टि से आवश्यक है कि लोगों की रुढ़िवादी धारणाओं को परिवर्तित किया जाए, उनमें भौतिक दृष्टिकोण पैदा किए जाएं और शिक्षा का विस्तार किया जाए, ताकि ये लोग अपने आप को नए विचारों के अनुकूल ढाल सकें।

विकास का स्तर किसी देश के सामाजिक ढांचे पर निर्भर करता है। बहुत से सामाजिक मूल्य एवं संस्थाएं ऐसी होती हैं, जो विकास की प्रक्रिया में बाधाएं डालती हैं। कुछ कारक इसमें सहायक सिद्ध होते हैं। भारत में भी कुछ संस्थाएं एवं मूल्य ऐसे हैं, जो विकास की प्रक्रिया को धीमा कर रहे हैं। उदाहरणार्थ : भारतीय समाज चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र) में बंटा हुआ है। समस्त जातियां एवं उपजातियां इन्हीं चार वर्णों में विभाजित है। प्रत्येक जाति के लिए एक व्यवसाय का निर्धारण कर दिया गया है। व्यवसाय में परिवर्तन करना जाति व्यवस्था के विरुद्ध है। जाति व्यवस्था कई प्रकार से विकास में बाधाएं डाल रही है। इसके सिद्धान्त प्रजातंत्र के सिद्धान्तों से मेल नहीं खाते हैं। प्रजातंत्र के लिए भाईचारा, सद्भावना, मित्रवत् व्यवहार, स्वतन्त्रता व एकीकरण आवश्यक है। जाति व्यवस्था इन सब में बाधाएं डालती हैं। जाति व्यवस्था के कारण सम्पूर्ण समाज छोटी–छोटी इकाइयों में विभाजित हो गया है। इस प्रकार का विभाजन प्रजातंत्र के विरुद्ध है और आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न करता है। योजनाओं में बेकारी की समस्या को दूर करने के लिए अनेकों कार्यक्रम बनाए गए हैं। व्यवसाय के नवीन मार्ग निकाले गए हैं, जो उसके जातीय व्यवस्था से अलग है। जैसे मुर्गीपालन, सुअरपालन का कार्य सभी जातियां करने को तैयार नहीं होती। संयुक्त परिवार व्यवस्था भी विकास में बाधाएं डाल रही हैं जब दो या तीन, पीढ़ी के व्यक्ति साथ रहते हैं तो उसे संयुक्त परिवार व्यवस्था कहते हैं। संयुक्त परिवार व्यवस्था अपने सदस्यों को हर प्रकार का संरक्षण प्रदान करती है। उसके भोजन, वस्त्र, सुख सुविधा का प्रबन्ध करती है। संयुक्त परिवार में मिलने वाली यह सुरक्षा ही विकास में बाधक है, क्योंकि परिवार के सभी सदस्य कठिन परिश्रम नहीं करते। कुछ बिना कार्य किए परिवार पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार से सभी सदस्यों का योगदान विकास कार्यों में नहीं मिल पाता, परिवार से मिलने वाली सुरक्षा निष्क्रियता बढ़ाने में सहायक हो जाती है। इस प्रकार संयुक्त परिवार व्यवस्था एकाकी परिवार की अपेक्षा विकास कार्यों में बाधक है। गतिशीलता की कमी भी विकास में बाधक है। गतिशीलता दो प्रकार की होती है एक व्यावसायिक गतिशीलता, जिसका अभिप्राय यह है कि अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़कर अन्य कोई व्यवसाय करना। दूसरा स्थानीय गतिशीलता है। इसका अर्थ है अपने मूल निवास स्थान से दूसरे स्थान पर जाकर बसना। भारत में स्थानीय गतिशीलता की कमी है, क्योंकि व्यक्ति अपने गांव, जिला तथा प्रदेश को छोड़कर दूसरे स्थान पर जाकर काम करना पसन्द नहीं करता। इस गतिशीलता की कमी का परिणाम यह होता है कि बहुत से व्यक्तियों को रोजगार नहीं मिल पाता तथा निर्धनता में जीवन काटना पड़ता है।

RRIJM 2015, All Rights Reserved

धन का अनुचित संचय भी विकास में बाधक है। भारत में जेवर बढ़ाने की प्राचीन परम्परा है। जो धन जेवर बनाने में लग जाता है, उसका पूंजी निवेश नहीं हो पाता, वह विकास कार्यों में नहीं लग पाता। यदि यही धन पोस्ट आफिस तथा बैंकों में जमा कर दिया जाय तो व्यक्ति विशेष तथा सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए हितकारी होगा। ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक तथा पोस्ट आफिस दूर होने के कारण लोग अपना पैसा जमा नहीं कर पाते। सम्पूर्ण धनराशि की बचत नहीं हो पाती, जो विकास के दृष्टिकोण से अनुपयुक्त तथा अनुत्पादक है। हमारे यहां त्यौहारों तथा उत्सवों पर आवश्यकता से अधिक व्यय कर दिया जाता है। जन्म दिन मनाने की एक नयी परम्परा चल पड़ी है। यह धन यदि विकास कार्यों में लग सके तो राष्ट्र और अधिक सम्पन्न हो सकता है। साहस की कमी भी विकास में बाधाएं डालती हैं। हम उसी रोजगार या व्यवसाय को करना पसन्द करते हैं, जिसमें हानि होने की सम्भावना न हो। काम की अपेक्षा आराम को प्रोत्साहन दिया जाता है। व्यक्ति उस कार्य को करना पसन्द करता है जो सरल हो, कठिन परिश्रम न करना पड़े। इनके अलावा कुछ और भी सामाजिक कारक हैं, जो विकास में बाधा पहुंचाते हैं। ये कारक विकास प्रक्रिया के कारण ही जन्म लेते हैं, और विकास पर अनुचित प्रभाव डालते हैं। उदाहरण के लिए नगरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण गन्दी बस्तियों का निर्माण होता है, इसमें रहने वालों का स्वास्थ्य प्रायः खराब रहता है, क्योंकि व्यक्ति को शुद्ध जलवायु नहीं मिल पाती। व्यक्ति रोग से पीड़ित हो जाता है। इससे उसकी कार्य क्षमता घट जाती है। कार्य क्षमता घटने से व्यक्ति निर्धन एवं ऋणी हो जाता है, उसका बहुत सा धन चिकित्सा पर व्यय होने लगता है। बीमार रहने से उसकी आय भी घट जाती है तथा इसी चक्रीय क्रम की पुनरावृत्ति से विकास प्रभावित होता है।

अतः यदि हम क्षेत्रीय विकास की परिकल्पना को साकार करना चाहते हैं तो इन सामाजिक एवं संस्थानिक कारकों की ओर ध्यान देना होगा। भारत में विकास की गति को तीव्र बनाने के लिए विवेकशीलता, प्रजातंत्र के सिद्धान्तों पर कार्य और आधुनिकीकरण वांछनीय है।

सन्दर्भ :

1.दूबे, बी0, सिंह, एम0 इण्टीग्रेटेड रूरल डेवलपमेंट, जीवनधारा प्रकाशन, वाराणसी, 2005
2.दत्त, रूद्र, सुन्दरम्, के0 वी0 एस0 भारतीय अर्थव्यवस्था, एस0 चांद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 2000
3.सिंह, कतार, रूरल डेवलपमेंट, प्रिंसिपिल्स, पालिसीज एण्ड मैनेजमेंट, सेकेण्ड एडीसन, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1999
4.सिंह, कतार उपरोक्त,
5.माइकल, पी. टोडारो, इकोनॉमिक्स फार ए डेवलपिंग वर्ल्ड (ऐन इन्ट्रीडक्शन टू प्रिंसिपुल्स, प्रॉबलम्स एण्ड पोलिसीज फार डेवलपमेंट), सेख वासटांस प्रिंटिंग प्रेस, हांगकांग, 1977,

RRIJM 2015, All Rights Reserved